International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(5): 182-184

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(5): 182-184
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 21-08-2023
Accepted: 25-09-2023

डॉ. अवधेश कुमार
अस्सिटेन्ट प्रोफेसर, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अवधेश कुमार
अस्सिटेन्ट प्रोफेसर, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, दिल्ली, भारत

अष्टाध्यायी में उल्लिखित अपादान पद का विश्लेषण

डॉ. अवधेश कुमार

प्रस्तावना

अष्टाध्यायी' जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है कि इसमें' आठ अध्याय हैं। इसको इस प्रकार कह सकते हैं कि अष्टाध्यायी का विभाजन अध्यायों में है तथा अध्यायों का उपविभाजन पादों में है। इसमें आठ अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय में 4 पाद हैं । इस प्रकार कुल 32 पाद हैं। पादों में सूत्रों का विभाजन है ।

प्रथम - अध्याय - प्रथम पाद- 74 , द्वितीय पाद- 73, तृतीयपाद -93 , चतुर्थ पाद- 109 सूत्र ।

द्वितीय-अध्याय - प्रथम पाद - 71, द्वितीय पाद- 38, तृतीयपाद – 73, चतुर्थ पाद- 85 सूत्र

तृतीय -अध्याय - प्रथम पाद- 150, द्वितीय पाद- 188, तृतीयपाद – 176, चतुर्थ पाद- 117 सूत्र

चतुर्थ -अध्याय- प्रथम पाद- 176 , द्वितीय पाद- 144 तृतीयपाद - 166, चतुर्थ पाद- 144 सूत्र

पंचम-अध्याय- प्रथम पाद- 135, द्वितीय पाद- 140 तृतीयपाद -119, चतुर्थ पाद- 160 सूत्र

षष्ठ-अध्याय- प्रथम पाद- 217, द्वितीय पाद- 199 तृतीयपाद - 138, चतुर्थ पाद- 175, सूत्र

सप्तम-अध्याय- प्रथम पाद- 103, द्वितीय पाद- 118, तृतीयपाद -119, चतुर्थ पाद-97 सूत्र

अष्टम-अध्याय- प्रथम पाद- 74, द्वितीय पाद- 108, तृतीयपाद -119, चतुर्थ पाद-67 सूत्र

अष्टाध्यायी के प्ररम्भ में 14 प्रत्याहार सूत्र हैं, जिन्हें माहेश्वर सूत्र भी कहते हैं। इस प्रकार अध्यायायी में सूत्रों की संख्या - 3979 है। यह संख्या रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित अष्टाध्यायी के अनुसार है[1]।

व्याकरणाध्ययन करते समय हमारे मन में विभक्ति प्रकरणों पर अनेक प्रश्न उठते हैं, उन्हीं प्रश्नों के अन्तर्गत अपादान कारक में भी प्रायः प्रारम्भ में ही नहीं सम्पूर्णतया विभक्ति प्रकरण को अध्ययन कर लेने के पश्चात् भी मस्तिष्क में उथल-पुथल होती रहती है। इसलिये इस प्रकरण के अपादान कारक को विश्लेषित करते हैं-

"ध्रुवमपायेऽपादानम्"[2] से अपादान संज्ञा होती है और "अपादाने पञ्चमी" [3] से पञ्चमी विभक्ति, ये बात आरम्भिक छात्र को बता दी जाती है पर बाद में गहन अध्ययन करके छात्र ही प्रश्न पूछता है कि "ध्रुव" किसे कहेगें? "अपाय" क्या होता है ? अपादान संज्ञा किसकी होगी ध्रुव की या अपाय की, इत्यादि अनेकों प्रश्न सहजता से मस्तिष्क में आ ही जाते हैं।

"ध्रुव" शब्द "ध्रु गतिस्थैर्ययोः"[4] धातु से "नंदिग्रहि."[5] से "अच्" प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है और धातु में दो अर्थ 'गति' और 'स्थिरता' दृष्टिगोचर हैं। यद्यपि दोनों अर्थ एक ही साथ एक शब्द के लिये कदाचित् प्रयुक्त नहीं होते परन्तु इस शब्द को अर्थानुरूप गृहीत करने के लिये दोनों का ही ग्रहण किया जा सकता है। फिर भी हम यहाँ "स्थिरता" का ही ग्रहण करते हैं।

अपाय अर्थात् अलगाव = वियोग = अलग या विश्लेषण को कहते हैं। इतने मात्र अर्थ को परिभाषित करते हैं तो अर्थ बनेगा- अलग होने पर ध्रुव (स्थिर) की अपादान संज्ञा होती है। विश्लेष अर्थात् विभाग (अलगाव) तो हो रहा है पर अपादान संज्ञा किसकी करें ध्रुव की या अपाय की तो कहा जाता है कि- जो ध्रुव अपाय से युक्त हो और उस अपाय के साध्य में जो ध्रुव = अवधिभूत होगा उसी की अपादान संज्ञा होगी। (सूत्र में निर्दिष्ट अपाये शब्द सप्तमी एकवचन है)। और अपाये में विषय सप्तमी की महत्ता प्रकट होती है।

इसी अर्थ से ये बात भी सिद्ध हो जाती है कि जो अस्थिर है उससे भी कोई पतित हो तो भी अस्थिर पदवाच्य में पञ्चमी हो जाती है अपादान संज्ञा होने से, जैसे एक सामान्य उदाहरण लें कि "घोड़े से गिरता है" इसमें पञ्चमी सामान्यतः सिद्ध है पर यदि कहें कि "दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है" इसमें घोड़े के अस्थिरत्व होने से असिद्ध थी पर "अवधिभूत" कहने पर सिद्ध हो जाता है।

हमने प्रायः सर्वत्र यही देखा है कि धातु के अर्थ से ही शब्दार्थ ग्रहण किया जाता है जैसे कि पूर्व में धातु के अर्थ से "स्थिरता" का ग्रहण किया था किन्तु अनर्थत्वात् उसे स्पष्टतया "अवधिभूत" के रूप में ग्रहण करना पड़ता है, इसी बात को भर्तृहरि जी ने अपने ग्रन्थ वाक्यपदीयम् में अवगत कराया है कारिकाओं के माध्यम से-

अपाये यद् उदासीनं चलं वा यदि वाऽचलम्।
ध्रुवमेवाऽतदावेशात् तदपादानमुच्यते।।1।।

पततो ध्रुव एवासौ यस्माद् अश्वात् पतत्यसौ।
तस्याप्यश्वस्य पतने कुड्यादि ध्रुवमिष्यते।।2।।

मेषान्तरक्रियापेक्षम् अवधित्वं पृथक् पृथक्।
मेषयोः स्वक्रियापेक्ष कर्तृत्वं च पृथक् पृथक्।।3।।

प्रथम कारिका में सामान्यतः अपादान संज्ञा की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि- विश्लेष होने में जो उदासीन अर्थात् अपायजनक व्यापार का आश्रय न हो वह "चल" हो या "अचल" ध्रुव ही होता है। क्योंकि वियोगजनक व्यापार का वह आश्रय नहीं होता है इसलिये "अपादान" कहलाता है।

द्वितीय कारिका में सामान्यतः जिसकी अपादान संज्ञा की अगर वो भी कभी अपादानत्व वहन करता हुआ अपने स्थान से वञ्चित हो अर्थात् उस अपाय का व्यापार उसमें न हो रहा हो तो उस तृतीय ध्रुव (अवधिभूत) की भी शास्त्र में अपादान संज्ञा की जाती है जैसे- भित्ति से गिरते हुए घोड़े से देवदत्त गिरता है-

कुड्यात् पततोश्वात् देवदत्तः पतति।।

यहाँ तृतीय कुड्य (भित्ति) की भी अपादान संज्ञा हो गई।

तृतीय कारिका में भी द्वितीयवत् उदाहरण देकर अवगत कराया है कि यदि कोई दो मेष (भेंढ़) परस्पर में लड़कर अलग हों तो भी उन दोनों मेषों की पृथक्-पृथक् अवधित्व क्रिया को लेकर पृथक्-पृथक् कर्तृत्व सिद्ध होता है इसलिये अपादान विधान करके पञ्चमी सिद्ध मानी अन्यथा वार्तिक विधान करना पड़ता इस उदाहरण के लिये-

भेंढ़े एक दूसरे से हट रही हैं-

परस्परस्माद् मेषौ अपसरतः।।

अन्तिम में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न देते हैं- जैसे कि "ग्रामाद् आयाति" गाँव से आता है इत्यादि उदाहरणों में "

ध्रुवमपायेऽपादानम् ” से अपादानत्व सिद्ध होने से पञ्चमी सिद्ध होती है किन्तु “ग्रामान्न आयाति” गाँव से नहीं आता है, इत्यादियों में विश्लेष न होने से अपादान संज्ञा कैसे होती है-

उत्तर- “ग्रामान्न आयाति” उदाहरण में ‘आयाति’ क्रिया का प्रथम कारक “ग्रामात्” के साथ सम्बन्ध होकर पञ्चमी होगी अनन्तर नञ् के साथ सम्बन्ध् होगा। अत एव नञ् द्वारा प्रतिपादित निषेध कार्य से पहले ही अपादान संज्ञा का विधान होकर विभक्ति सिद्ध हो जाती है और कोई दोष उद्भूत नहीं होता। ऐसे अन्य कारकों के भी उदाहरणों में समझना चाहिये।

सन्दर्भ

1. अष्टाध्यायी सूत्रपाठः, पंडित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ,रामलाल कपूर ट्रस्ट |
2. अष्टाध्यायी 1/4/24
3. अष्टाध्यायी 2/3/28
4. तूदादिगण -135
5. अष्टाध्यायी 3 /1/134